ISSN 2348-3857

भारत में क्षेत्रीयतावाद की समस्या का एक अध्ययन

डॉ. अमृता चौधरी

शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर (राजस्थान)

शोध सारांश

राष्ट्रवाद के आधार पर भारत में समय-समय पर प्रजातीय और धार्मिक समूहों ने प्रवेश किया और सभी ने यहाँ की सामाजिक और सांस्कृतिक व्यवस्था को अपने-अपने ढंग से प्रभावित करने का प्रयास किया। इनमें से अनेक समूह कुछ समय बाद भारतीय समाज का ही अभिन्न अंग बन गये। लेकिन बहुत से समूहों ने यहाँ धर्म, भाषा, प्रजाति और संस्कृति के आधार पर पृथकतावाद की भावना का विकास किया। भारत को स्वतंत्रता प्राप्त हुए इतना समय बीत जाने के बाद भी अल्पसंख्यकों के एकीकरण, धार्मिक एकीकरण तथा क्षेत्रीय एकीकरण की समस्याओं को सुलझाया नहीं जा सका है। आधुनिक भारतीय राष्ट्रवाद के सामने प्रमुख चुनौतियाँ क्षेत्रीयतावाद, भाषावाद, आतंकवाद, जातीयतावाद और साम्प्रदायिकतावाद खड़ी है, जिससे राष्ट्रवादी एकीकरण की भावना को ठेस पहुंचती है। आधुनिक राष्ट्रवादी विरोधी क्षेत्रीयतावाद के आधार पर वर्तमान में तेलंगाना राज्य के गठन के बाद भी केन्द्रीय गृह मंत्रालय के सामने 9 और नए राज्यों के गठन की मांगे लम्बित है। इनमें से पश्चिम बंगाल से गोरखालैण्ड और उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश में से बुन्देलखण्ड, कर्नाटक से कूर्ग, पश्चिमी उत्तर प्रदेश से हरित प्रदेश पूर्वी उत्तर प्रदेश और बिहार के कुछ भाग से भोजपुरी, बिहार के दरभंगा, मधुबनी, समस्तीपुर, सीतामढ़ी, समेत मैथिलीभाषी कुछ जिलों से मिथिलांचल, पश्चिम बंगाल और असम से ग्रेटर कूचबिहार और महाराष्ट्र के दक्षिणी हिस्से से विदर्भ राज्य बनाये जाने की मांगों को लेकर आन्दोलन छेड़ने की चेतावनी दे रहे है।

संकेताक्षर : *उत्तरदायी कारक, उदार सहयोगी प्रादेशिकता, सहकारी संघवाद*

भारतीय संघीय व्यवस्था में एक बहत महत्वपूर्ण पहलू क्षेत्रवाद का विकास व उसकी प्रगति रहा है। क्षेत्रवाद की प्रगति को राष्ट्रीय एकता के प्रतिकूल माना जाता है। कुछ दूसरे लोग अनुभव करते हैं कि क्षेत्रीयता की पहचान अपने में राष्ट्रीय एकता को बढ़ाने में गतिरोधक नहीं है, दोनों का सहअस्तित्व परस्पर लाभप्रद भागीदारी की स्थिति में सम्भव है। वास्तव में किसी भी समाज में क्षेत्रवाद के नकारात्मक व सकारात्मक दोनों ही पहलू होते है जो कि क्षेत्रवाद के उदय के कारणों तथा देश के राजनीतिक अभिजनों द्वारा इसे दी जाने वाली चुनौती पर आधारित होते है। इसलिए हमें उचित मूल्यांकन करने व भारत में क्षेत्रीयवाद की भूमिका को जानने के लिए पहले क्षेत्रवाद को जन्म देने वाले कारणों का विश्लेषण करना होगा तथा इसकी अभिव्यक्तियॉ क्या-क्या है, को जानना होगा। क्षेत्रवाद के लक्ष्य में किसी भू-भाग के एक भाग की पहचान पृथक क्षेत्र के रूप में होती है। लेकिन इस अर्थ में किसी क्षेत्र के भू-भाग को एक पृथक प्रदेश कहने के लिए क्या किन्हीं सुनिश्चित तत्वों की मौजूदगी आवश्यक है, इस पर अभी तक पूर्ण सहमति नहीं है। फिर भी किसी भू-भाग को क्षेत्र के रूप में देनें वाले तत्व है-भौगोलिक, संस्कृति, धार्मिक, भाषायी, लोकवार तथा रीतिरिवाज, विकास के सामजिक -आर्थिक तथा राजनीतिक समान ऐतिहासिक परम्पराएँ तथा अनुभव, रहने के समान तरीके और इससे भी अधिक साथ रहने की व्यापक अनुभूतियाँ (जिनसे हम अलग होने का अनुभव करते हैं) इत्यादि । इस आशय में क्षेत्र की पहचान की अनुभूति राज्य की सीमाओं जैसे कि तमिलनाडू, कर्नाटक, पश्चिमी बंगाल इत्यादि के समरूप हो सकता है या यह राज्य के भाग जैसे कि आन्ध्रप्रदेश में तेलंगाना, महाराष्ट्र में विदर्भ, पश्चिमी बंगाल में दार्जलिंग इत्यादि में हो सकती है या यह कई राज्यों से मिले भाग जैसे कि झारखण्ड (बिहार, उड़िसा, पश्चिमी बंगाल) में भी हो सकती है।

ISSN 2348-3857

क्षेत्रवाद

डॉ. रशीउद्दीन खां का मत है कि क्षेत्रीयतावाद और राष्ट्रवाद में सहअस्तित्व सम्भव है। उन्होंने क्षेत्रीयतावाद के सकारात्मक पक्ष की चर्चा करते हुए कहा कि यह धारणा गलत सिद्ध हुई है कि क्षेत्रीयतावाद के कारण भारतीय संघ छिन्न-भिन्न हो जाएगा।[3] अतिपु यह मत अधिक सही सिद्ध हुआ कि क्षेत्रीयतावाद और राष्ट्रवाद दोनों एक दूसरे से जुड़े हुए हैं। भारत में क्षेत्रवाद सामान्यत: पृथकवादी नहीं है। क्षेत्रीयतावाद का लक्ष्य केवल क्षेत्र अथवा समुदाय विशेष के लिए अधिक सुविधाएं प्राप्त करना है। इसका अनिवार्य अर्थ यह नहीं है कि वह अन्य क्षेत्रों के विकास अथवा राष्ट्र की अखण्डता के विरूद्ध है, बल्कि एक सीमा तक इस प्रकार के क्षेत्रवाद ने भारत के विकास को गति प्रदान की है। अनेक ऐसी योजनाएं और कार्यक्रम है जो क्षेत्रीय दबाव के कारण आगे बढ़े है। क्षेत्रवाद ने कई राज्यों के विकास के लिए विशेष प्रयत्न किए है। इन राज्यों के विकास से सारे देश को लाभ होता है। तमिलनाडू, आन्ध प्रदेश, पंजाब और हरियाणा में विकास इसका परिणाम है।

डॉ. इकबाल नारायण के शब्दों में ''क्षेत्रवाद की प्रक्रिया कई आयामों वाली एक अत्यन्त जटिल एवं मिश्रित व्यवस्था है जैसे एक साथ ही एक समय में भौगोलिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक एवं मनोवैज्ञानिक रूप लिए हुए है।'' इकबाल नारायण ने भारतीय राष्ट्रवाद में क्षेत्रवाद के उदय की जड़ नागरिकों के मस्तिष्क को माना है। हर व्यक्ति किसी न किसी रूप में दोहरे व्यक्तित्व को प्रस्तुत करता है और उसमें उपराष्ट्रवादी और राष्ट्रवादी दोनों ही प्रवृत्तियां पाई जाती है। उपराष्ट्रवादी प्रवृत्ति स्वाभाविक रूप से राष्ट्रवादी प्रवृत्ति से पहले आती है। भारत की राजनीतिक अवस्था और विकास की प्रक्रिया में यह एक अपरिहार्य तथ्य है। कई बार यह प्रक्रिया अत्यन्त गम्भीर रूप प्राप्त कर लेती है और इसका प्रयोग पृथकतावाद अथवा देश के अहित में किया जाता है। नागालैण्ड और मिजोरम दोनों क्षेत्र. में अलग होने के आन्दोलन, गोरखालैण्ड की माँग का आन्दोलन, असम में बोडो आन्दोलन पंजाब में खालिस्तान की मांग और आंतकवाद की भयानकता, जम्मू-कश्मीर में लगने वाले स्वतंत्रता के नारे आदि क्षेत्रीयतावाद की प्रवृत्ति के विकृत रूप हैं जो अहितकर हैं, परन्तु सामान्य रूप से क्षेत्रवाद की प्रक्रिया पृथकतावाद से अलग है। इसका वास्तविक सम्बन्ध क्षेत्र विशेष के लिए आर्थिक सुविधाएं प्राप्त करने के लिए दबाव डालने से है। दूसरे शब्दों में, वह राजनीतिक सत्ता में भागीदारी पाने का एक साधन है। क्षेत्रीयतावाद से तात्पर्य एक देश या देश के किसी भाग में उस छोटे से क्षेत्र से है जो आर्थिक, भौगोलिक और सामाजिक कारणों से अपने पृथक अस्तित्व के लिए जागरूक है।

भारतीय राष्ट्रवाद के राजनीतिक परिप्रेक्ष्य में क्षेत्रीयतावाद से अभिप्राय है- राष्ट्र की तुलना में किसी क्षेत्र विशेष अथवा राज्य या प्रान्त की अपेक्षा एक छोटे से क्षेत्र से लगाव, उसके प्रति भक्ति या विशेष आकर्षण दिखाना। इस दृष्टि से क्षेत्रीयता राष्ट्रीयता की वृहद् भावना का विलोम है और इसका ध्येय संकुचित क्षेत्रीय स्वार्थो की पूर्ति होता है।

क्षेत्रवाद के लिए उत्तरदायी कारक

क्षेत्रवाद एक बहुआयामी तथ्य है अत: क्षेत्रवाद के विकास व प्रगति के लिए उत्तरदायी कारकों को पाँच विस्तृत श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है। वे हैं सांस्कृतिक, आर्थिक, भाषा, जाति व राजनीतिक कारक। यह कहना अनावश्यक ही है कि ये पॉचो एक दूसरे से सम्बन्धित है तथा कभी-कभी एक दूसरे में विलीन हो जाते है। इसलिए यह कहना बहुत मुश्किल है कि इनमें से प्राथमिक भूमि किस की है। यह इस पर निर्भर करता है कि कौन-सा कारक प्राथमिक है तथा कौन-सा द्धितियक है।

सांस्कृतिक - कुछ राज्यों मे कई भाषा-भाषी एवं सांस्कृतिक लोग रहते है । उन्हे अपनी भाषा एवं संस्कृति पर गर्व है । इसी आधार पर द्रविड मुनेत्र कडगम ने भारतीय संघ से अलग होने की बात कही थी।

आर्थिक - भारत के कुछ राज्यों के कुछ क्षेत्रों में अधिक आर्थिक विकास हुआ और आर्थिक विकास की दृष्टि से कुछ क्षेत्र पिछड गए। इससे इन पिछड़े क्षेत्रों में असन्तोष फैलने लगा और क्षेत्रीयतावाद की भावना फैलने लगी। उदाहरणार्थ - आन्ध्र प्रदेश में तेलंगाना का क्षेत्र, राजस्थान में दक्षिणी-पूर्वी राजस्थान, महाराष्ट्र में विदर्भ, उत्तर प्रदेश में पूर्वांचल, बुन्देलखण्ड आदि क्षेत्रों में तेज रफ्तार से विकास नहीं हो पाया और वे अपने लिए पृथक राज्य की मांग करने लगे।

उड़ीसा के भूतपूर्व मुख्यमंत्री जे.बी. पटनायक ने सरकारी आंकड़ो का हवाला देते हुए कहा कि आर्थिक विकास में पूर्वी राज्यों की उपेक्षा करने के परिणामस्वरूप क्षेत्रीय आर्थिक असन्तुलन और विषमताएं बढ़ी है। उनके अनुसार अखिल भारतीय वित्तीय सार्वजनिक संस्थाओं एवं निकायों द्वारा दी जाने वाली सहायता एवं वित्तीय निवेश में पूर्वी राज्यों को उनका समुचित हिस्सा नहीं मिल पाता है। सन् 1985 तक प्रति व्यक्ति गैर बैंकिग वित्तीय संस्थानों से सार्वजनिक क्षेत्र में सहायता इस प्रकार रही है - पश्चिम बंगाल 217 रु., उड़ीसा 119 रु., असम 75 रु., बिहार 69 रु. जबकि

अखिल भारतीय औसत 247 रु. रहा है। हरियाणा, कर्नाटक, तमिलनाडु और पंजाब का औसत क्रमश: 365 रु., 363 रु., 361 रु. तथा 350 रु. रहा है। आर्थिक स्त्रोत कम हैं और मांगों में निरन्तर विविधता रही है। मांग और उत्पादन में अन्तर का एक प्रभाव यह हैं कि व्यक्ति, समुदाय, वर्ग और क्षेत्र सभी स्तरों पर प्रतिस्पर्द्धा होती है।

भाषा - भारत में भाषागत विविधता रही है। उत्तर और दक्षिण की भाषा एक-दूसरे से भिन्न रही है। भाषा को राजनीतिक हथियार के रूप में प्रयुक्त करने की प्रवृत्ति बढ़ी है। भाषा के प्रश्न को लेकर उत्तर तथा दक्षिण राज्यों में हिंसात्मक आन्दोलन हुए और राष्ट्रीयता एकता संकट में पड़ गयी।

जाति - जाति के आधार पर भी क्षेत्रीयता की प्रवृत्ति बढ़ी है।। जिन क्षेत्रों में किसी एक जाति की प्रधानता रही वहां क्षेत्रीयता की प्रवृत्ति दिखलायी देती है। हरियाणा और महाराष्ट्र में क्षेत्रीयता की प्रवृत्ति फैलाने में जाति प्रभावक तत्व रहा है।यद्यपि जाति व्यवस्था क्षेत्रवाद के लिए अपने आप में बहुत महत्वपूर्ण तत्व नहीं है। परन्तु जहां यह आर्थिक हितों (जैसे महाराष्ट्र में मराठा जाति), भाषायी समुदायों (तमिलनाडु में तमिल भाषी और गैर -ब्राह्मण जातियां) और धर्म (पंजाब में सिक्ख धर्म और जाट जाति) के साथ जुड़ी हो, वहां एक क्षेत्रवाद को प्रबल बनाने में काफी सहायक होती है।

राजनीतिक कारक - राजनीतिक कारणो से भी प्रादेशिकता की मॉग बढी है । राजनीतिज्ञ यह सोचते है कि यदि पृथक राज्य बन जायेंगे तो उनकी राजनीतिक महत्चकांक्षाओ की पूर्ति आसानी से हो सकेगी। प्रादेशिक दलों जैसे डी. एम. के. , अकाली दल, झारखण्ड पार्टी, शिवसेना आदि ने भी राजनीतिक कारणो से प्रादेशिकता की अग्नि प्रज्वलित की है।

क्षेत्रवाद की भूमिका

भारत में क्षेत्रवाद एक ओर तो विभिन्नताओं और ऐतिहासिक तथ्यों की उपज है तथा दूसरी और स्वतंत्रता के बाद की स्थिति में यह राजनीतिक केन्द्रीयकरण की प्रक्रिया व भेदभाव पूर्ण विकास का परिणाम है। देश के विभिन्न भागों में महत्वपूर्ण विशिष्टताओं तथा संकेतात्मक विभिन्नताओं के तहत, क्षेत्रवादी आन्दोलन की विशेषताएं सामान्य है। भारत के कुछ प्रान्तों में क्षेत्रवाद की अनुभूति बहुत ही गहरी हो गई है तथा इसके विकास को राष्ट्रीय एकीकरण के प्रतिकूल वर्णित किया जाता है हालांकि वस्तुनिष्ठ विश्लेषण यह सुझाव देते है कि क्षेत्रवाद या जातीय वफादारी भारतीय राष्ट्र-राज्य के लिए केवल एक चुनौती पैदा करते है जिसे तार्किक वाक्यों या प्रमाणों के आधार पर नकारा नहीं जा सकता है। संयुक्त राज्य अमेरिका जैसे देश भी क्षेत्रवाद के महत्व को स्वीकार करते है। भारत के हजारों सालों के इतिहास से हमें क्षेत्र के प्रति वफादारी के बारे में जानकारी मिलती है। भारत में आज मिश्रित संस्कृति है, जिसको वर्तमान सामाजिक-आर्थिक खण्डों के साथ, एक दूसरे को प्रभावित करने व मिलाने में आदिकालीन दरारें है। लेकिन भारतीय इतिहास, संस्कृति तथा भूगोल भारत के एकीकरण के लिए महत्वपूर्ण साधन तथा परिकल्पनायें प्रस्तुत करते हैं। भारतीय इतिहास का यह महत्वपूर्ण सत्य है कि भारत के लोगों में क्षेत्रीय एवं सांस्कृतिक पहचान के साथ भारतीयता की भावना रही है। अंग्रेजी उपनिवेशवाद काल में अनेक प्रकार के राष्ट्रीय विचारों तथा आन्दोलन ने भारतीयता की इस भावना को और अधिक मजबूत किया था। इसलिए भारत की भाषाई, सांस्कृतिक तथा धार्मिक अनेकता राष्ट्रीय अखण्डता के लिए खतरा नहीं है।

यह ध्यान देना भी महत्वपूर्ण है कि आज कोई भी क्षेत्रीय आन्दोलन ऐसा नहीं है जिसने अपने आप को देश या समाज से पूर्णता अलग कर लिया हो। यहाँ पर कोई भी क्षेत्र एक भाषायी नहीं है। कोई भी क्षेत्र अपनी संस्कृति या धर्म के आधार पर समरूप नहीं है। विभिन्नता जो कि भारत की विशेषता है, यह क्षेत्रीय सामाजिक ढ़ांचे में भी समान रूप से पाई जाती है। धर्म क्षेत्र की सीमाओं के आधार पर व्याप्त है, इसकी कोई सीमा नहीं होती है। यहाँ पर यह स्वीकार्य है कि आर्थिक क्षेत्र में अन्तर क्षेत्रीय निर्भरता अत्यधिक है। दूसरी तरफ क्षेत्रवादी विकास राजनीतिक संस्कृति में भागीदारी का कारण है। यह जनता को अपनी मांगे रखने के लिए तैयार करता है तथा राजनीतिक प्रणाली में साधनों को उपलब्ध कराता है। जहाँ पर क्षेत्र या राष्ट्र की जागरूकता होगी, वहाँ पर जनता में दूसरे क्षेत्रों से क्षेत्रवादी प्रतियोगिता होगी और इस हेतु केन्द्र सरकार से स्थिति में सुधार के लिए मांग की जायेगी। प्रतियोगितावादी क्षेत्रवाद इस आधार पर गैर-पृथकवादी होते है तथा क्षेत्र अपने आपको राष्ट्रीय धारा से जोड़े रखते है।

राष्ट्र-निर्माण की समस्या बहुत ही विकट है, यदि सरकार चुनौतियों का प्रभावकारी तरीके से सामना करना चाहती है तथा विभाजन की मांग का सामना करती है तो आवश्यक कदम उठाने की क्षमता व इच्छा आवश्यक है। जिससे विभाजन की भावना को रोका व सुधारा जा सके। सांस्कृतिक बहुलवादी समाजों की विशेषतायें संघर्ष की एक प्रवृति रखती है। लेकिन यह आवश्यक नहीं है कि इससे विघटन की सम्भावना हो। वास्तव में जैसा कि इकबाल नारायण ने बताया कि ''देश का विघटन सांस्कृतिक बहुलवाद का परिणाम नहीं होता है, यह आर्थिक व राजनीतिक दोनों की प्रबंन्धकीय स्तर

पर असफलता के कारण शुरू होता है।'' वास्तव में, बहुलवादी समाजों में संघर्ष एक तथ्य है इसका कारण होता है आज जनता का आर्थिक असंतोष व उनका शोषण जो राजनीतिक अभिजनों द्वारा होता है। यह संघर्ष मूलत: सौदेबाजी व राजनीतिक दबावों से प्रकट होता है और इसका उद्देश्य होता है, उचित राजनीतिक-आर्थिक हिस्सेदारी न कि पृथकवाद। इसलिए यदि राजनीतिक-आर्थिक व्यवस्था पर्याप्त मात्रा में लचीली दिखती है तथा उचित मांगों का समायोजन होता है तो यह न केवल उस संघर्ष को रोकती है जिसका उद्देश्य अनुचित तथा गलत सौदेबाजी होता है बल्कि यह इसके स्वरूप तथा भागीदारी पूर्ण व्यवहार को राष्ट्र-निर्माण के हित में बदलती है। अत: यह राजनीतिक विकास और सहयोग की वह प्रक्रिया है जो नये लक्ष्यों तथा मांगो को उदार व्यवहार में लाती है।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि क्षेत्रवाद राष्ट्र निर्माण का संकट नहीं है। यह विकास का संकट है। इसका समाधान एक नये समाज के निर्माण में है। एक वह समाज जिसका आधार पूर्ण स्वतन्त्रता का आदर करना तथा बहुलवाद व सभी समाजों में अवास्तविक सिद्धान्त को खत्म करना हो। क्षेत्रीयवाद का भारतीय सामाजिक व राजनीतिक शैली पर काफी प्रभाव पड़ा तथा आन्दोलनात्मक राजनीति को बढ़ावा मिला। क्षेत्रीय आन्दोलनों को चलाने के लिए आर्थिक विषमता, धर्म, जाति और भाषा का सहारा लिया गया। यथार्थ में क्षेत्रीयता की समस्या आज भारत की राष्ट्रीय एकता के मार्ग में बाधा बन गई है। संघर्षात्मक प्रादेशिकता की भावना को समाप्त कर उदार सहयोगी प्रादेशिकता एवं सहकारी संघवाद की भावना के प्रचार की आवश्यकता है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. नारंग, ए.एस., भारतीय शासन एवं राजनीति, गीताजंली पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 2013, पृ. 277-282
2. कोठारी, रजनी, पॉलिटिक्स इन इंडिया, पृ. 330-332
3. नूरानी, ए.जी., द सन् ऑफ द सॉइल डॉक्ट्राइन, इण्डियन एक्सप्रेस, 20 अप्रेल, 1980, पृ. 6
4. बसु, दुर्गादास, भारत का संविधान - एक परिचय, 2012, पृ. 71-72
5. भारत 2015, सूचना प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, पृ. 950
6. खाँ, रशीदउद्दीन, दि रीजनल डाइमेंसन, सेमिनार न. 169, 1974
7. लवानिया, एम. एन. एवं जैन, शशि के., भारत में सामाजिक समस्या, रिसर्च पब्लिकेशन, जयपुर, 2001 पृ. 261
8. राठौड़, मधु, भारतीय राजनीतिक व्यवस्था, आविष्कार पब्लिशर्स डिस्ट्रीब्यूटर्स , जयपुर, 2002